मनोविज्ञान - अध्याय -१

भूमिका

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

मैं इस मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान रूपी प्रबंध को मानव के समक्ष अर्पित करते हुए, परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ । कामोन्मादी मनोविज्ञान जो आज शिक्षा में प्रचलित है, (जिसमें कामुकता के आधार पर संपूर्ण वर्चस्व उभरने की बात कही गई है) इससे मैं सहमत नहीं हो पाया क्योंकि मैं सदा समाधान को चाहता हूँ सुखी होना चाहता हूँ, समृद्धि पूर्वक जीना चाहता हूँ । इसी के साथ यह भी मैंने स्वयं को मूल्यांकित किया कि प्रचलित मनोविज्ञान के स्थान पर क्या होना चाहिए । जो कुछ भी प्राप्त साहित्य आज तक है, इसके सहारे इसका उत्तर नहीं निकल पाया । फलस्वरूप गहन चिंतन किया । इसके परिणाम में यह मनोविज्ञान अपने आप स्फूर्त हुआ । कितनी भी विधाओं में मैंने अनुभव किया, जीकर देखा, उन्हीं तथ्यों को इसमें सत्यापित किया है । यद्यपि साहित्य, मानव के एक छोटे से हिस्से के रूप में प्रस्तुत होता है । मेरा विश्वास इस संप्रेषणा में यही है कि कुछ भी पढ़कर प्रत्येक नर-नारी, उसके आशय को अपनी मानसिक विशालता के आधार पर स्वीकारने और परखने का कार्य किया ही करता है । इस ढंग से शब्द और वाक्य जैसे छोटे प्रकाशन भाग से, उसमें निहित विशालता को ग्रहण कर लेता है । यही मानव की सहज महिमा है ।

मानव संचेतना का आशय यही है कि हर मानव कल्पनाशील, कर्म स्वतंत्र है ही । यह सबको विदित है । इसी क्रम में सकारने, नकारने की कार्य शीलता हर मानव के मन में विचार और इच्छाओं में है, फलतः कार्य व्यवहार में प्रकाशित हो पाता है । इनके अतिरिक्त भी मानव इंगित हुई वस्तुओं को, प्रयोजनों के अर्थ में जांचने का भी काम करता है । मैंने मानव के प्रयोजन को समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह-अस्तित्व के रूप में पहचाना है । इसके साथ प्रयोजन को सार्थक परम्परा के रूप में प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही, इस मनोविज्ञान शास्त्र को प्रस्तुत किया हूँ । मेरा निवेदन है कि, मानव हर निर्णय को, प्रयोजनों के अर्थ में ही, सुदृढ़ रूप में स्वीकारने, अनुप्राणित होने और चरितार्थ

रूप देने की स्थिति में है, अतः उक्त रूप में मानव सहज उद्देश्य का सार्थक होना अवश्यम्भावी है । इसे हम एक ही शब्द से कहें कि सर्वमानव के सुखी होने के लिए, इस मनोविज्ञान को विचार शैली के रूप में मैंने प्रस्तुत किया है ।

इस अभिव्यक्ति में यह भी आशय समाहित है कि हर मानव सच्चाई की तलाश में है । सच्चाई को हर नर-नारी प्रमाणित करना भी चाहता है । ये दो सामान्य आशय सामान्य व्यक्ति में सर्वेक्षण पूर्वक देखने को मिलता है । अतएव सच्चाई को तलाशने के क्रम में, मैं अपने को एक मानव की हैसियत से ही मूल्यांकित कर पाया । इसी आधार पर तलाश प्रारंभ हुई । मैंने अपने में यह पाया कि मुझमें समझने की अर्हता (क्षमता, योग्यता, पात्रता को प्रमाणित करने योग्य) समाई हुई है । चिंतनपूर्वक समझने के आधार पर उद्देश्य पूर्ति के लिए, अपनी इस विचार-शैली को पहचानने लगा । क्रमशः मैंने अपने जीवन में सह अस्तित्व को साक्षात्कार किया, अनुभव किया । उन्हीं क्रियाकलापों का नाम जीवन अथवा मानसिकता के रूप में - विचारशैली नाम दिया । ऐसी विचारशैली जो मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के लिए तत्पर है । ऐसे एक सौ बाइस (122) रूपों में आकलन किया, उसको क्रमशः संप्रेषित किया । इसमें मुख्य यही प्रणाली चरितार्थ होने के लिए मुझे मिली कि मानवीयतापूर्ण आचरण को मैं प्रमाणित कर पाया । मानवीयतापूर्ण आचरण अपने स्वरूप में - मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में मिला । इससे, इस मानवीयतापूर्ण आचरण सहित मेरा, बहुत से ज्ञात अज्ञात व्यक्तियों के साथ, विश्वास पूर्वक जीना संभव हो गया ।

यह सर्व विदित तथ्य है कि विश्वास पूर्वक जीना बन जाता है, उसके फलन में व्यक्ति सुखी होता है, यह भी मुझे समझ में आया । विश्वास एवं सुख की अपेक्षा सभी मानवों में विद्यमान है ही । अस्तु मानव कुल के लिए यह मनोविज्ञान साहित्य स्वयं विश्वास पूर्वक जीने, परिवार में जीने, समाज में जीने और व्यवस्था में जीने के लिए निश्चित दिशा के लिए प्रेरक होगा । यही मेरी कामना है । “मानव हैं तो मानवीयता है ही ।”

दिनांक - 5.9.98

- ए. नागराज

अध्याय १: मानवीयता पूर्ण आचरण सहज व अनुसंधान क्यों ?

सम्पूर्ण मानव में किसी को पहचानने के लिए उसकी मानसिकता ही ध्रुव बिंदु है, चाहे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की कोई भी इकाई हो । जैसे अस्तित्व सहित गठित-संगठित आचरणों को पहचानना होता है, इसे विशेषकर परमाणु, अणु और अणु रचित पिण्डों में परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक पहचानना सहज है।

पदार्थावस्था में मृत, पाषाण, मणि, धातु के रूप में वैभव होना पाया जाता है । मिट्टी के आचरण को उर्वरक-संपन्नता और अनुर्वरकता के आधार पर पहचाना जाता है । मिट्टी विद्युतग्राही नहीं होती । पाषाणों को विभिन्न प्रजाति के रूप में उसमें संगठित सम्मिलित अणुओं के आधार पर पहचाना जाता है । ऐसे सभी पाषाण, विभिन्न अनुपातीय मिश्रण रूप में अस्तित्व में होते हैं । इसी के साथ इन में कठोरता भी है, जो भार या दबाव वहन के रूप में होना पाया जाता है । पाषाण विद्युत-ग्राही नहीं होते ।

पदार्थावस्था में मणि समुच्चय तात्विक गठन संगठन सहित पिण्ड के रूप में है । सभी मणियों के गठन में सर्वाधिक एक ही प्रजाति के परमाणुओं से संपन्न अणु का रहना देखा जाता है । इनमें भी कठोरता को नापना और रचना विधि को पहचानना संभव है । मणियों में कुछ मणियां विद्युत ग्राही होती हैं । सर्वाधिक मणियां विद्युत ग्राही नहीं होती । मणियों में सर्वाधिक मणियाँ किरण-ग्राही होती हैं, कुछ मणियाँ किरण स्रावी भी होती हैं।

सभी प्रजाति के धातु विद्युत ग्राही होते हैं और इनकी कठोरता के आधार पर इनके आचरणों को पहचाना जाता है । यही इनका प्रधान आचरण है । ऐसी धातुओं में से विकिरणात्मक धातुएं होना भी पहचाना जाता है जिसमें सम्पूर्ण परमाणु अपने परिवेशीय अंशों के गति सहित उष्मा मध्यांशों में समाहित होता रहता है । दूसरी भाषा से परिवेशीय अंशों की गति सहज उष्मा अंतर्नियोजित होता रहता है । यह विकिरण का स्रोत बना रहता है । ऐसे सभी परमाणु अजीर्ण परमाणु के रूप में व्याख्यायित हैं ।

इस प्रकार पदार्थावस्था का स्वरूप और आचरण नित्य प्रकाशमान है । इस सबको मानव ही समझने योग्य इकाई है । प्राणावस्था की सभी वनस्पतियों के अस्तित्व, पुष्टि सहित सारक-मारक आचरण को, मानव किसी न किसी रूप में पहचानता है, पहचान सकता है ।

मानवेतर जीवों को अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित वंशानुषंगीय आचरण के रूप में मानव ने देखा है और उक्त तीनों अवस्थाओं में पाये जाने वाले आचरण के प्रति मानव विश्वास करता है । इसी के साथ साथ यह भी निष्कर्ष मानव पाता है कि, मानवेतर सभी संसार अपने आचरण रूपी फलन तथा उसकी निरंतरता के प्रति आश्वस्त रहता है । इसी क्रम में मानव, मानव सहज आचरण को पहचानने में अभी तक विचाराधीन है । आदर्शवादी विधि से मानव का आचरण सुनिश्चित रहना नहीं हुआ ।

सुदूर विगत से अब तक किए गए दो प्रकार के चिंतन भौतिकवादी चिंतन और आदर्शवादी चिंतन पर जितने भी प्रयत्न और प्रयोग मानव कर पाया, इसके फलन में निश्चय रूप में मानवीय आचरण, शिक्षा संस्कार और कार्य, न्याय विधान परम्परा में प्रमाणित नहीं हो पाया । इसलिए मानवीय आचरण का अनुसंधान एक आवश्यकीय मुद्दा बना ही रहा । इसी क्रम में मानव सहज बहुआयामी अभिव्यक्ति सहज आचरण को मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में पहचानना, मानव कुल के लिए एक आवश्यकता रही ।

प्रत्येक मानव का बहुआयामी, प्रवर्तनशील, कार्यशील, विचारशील और मूल्यांकनशील होना पाया जाता है । इतना ही नहीं, कल्पनाशील, कर्म स्वतंत्र, अध्ययनशील, विश्लेषण और तुलनशील होना पाया जाता है । इन सभी प्रवर्तन, विचार, व्यवहार, कार्यों में कोई उद्देश्य भी होता है । इस प्रकार मानव की प्रवर्तनशीलता, उद्देश्यों के आधार पर सफलता-विफलताओं को आकलित करना, पुन: सफलता के लिए प्रयत्नशील होना, मानव कुल प्रतिष्ठा के रूप में वैभव देखने को मिलता है। इस क्रम में मानव का निश्चित आचरण अथवा सार्वभौम आचरण (सभी स्वीकार सकें, ऐसा आचरण अथवा सभी में कोई आचरण समान रूप से वर्तता हो) को पहचानने का भी प्रयास रहा है । इन्हीं विधियों से, इन्हीं तमाम प्रवर्तनों को, भौतिकवादी विधि से, शरीर संवेदनाओं को आधार मानते हुए जब मानव में, मानसिकता का विश्लेषण किया गया, तब कामुकता आधार बना । कामुकता को सफल बनाने के लिए, बाकी सभी प्रवर्तनों को एक आवश्यकता माना गया, जिससे कामोन्मादिता

प्रोत्साहित हुईं । इसे कुछ लोग गौरव सहित स्वीकारते भी रहे, कुछ लोग अस्वीकारते भी रहे । यह प्रतिपादन विशेषकर भौतिकवादी चिंतन के आधार पर रहा है ।

भौतिकवादी चिंतन ज्ञान ह्रास विधि का आकलन होने के कारण कामोन्मादी मनोविज्ञान भी, मानव कुल के लिए ह्रास का कारण बना जिसके परिणाम स्वरूप भोगोन्माद, लाभोन्माद-शोषण, द्रोह-विद्रोह और युद्ध मानसिकता बनते आया ।

ऐसे कामोन्मादी मनोविज्ञान को, लाभोन्माद के लिए बुद्धिजीवियों (केवल भाषा के आधार पर जीने की इच्छा रखने वालों) ने, विभिन्न प्रकार से प्रौद्योगिकीय व्यवस्था (इंडस्ट्रियल मैनेजमेंट) द्वारा अनेक प्रकार से प्रयास किया। सभी प्रयासों का अंतिम सार अभी तक यह निकला- (1) ज्यादा से ज्यादा उत्पादन, कम से कम आदमियों द्वारा (2) अधिक से अधिक लाभ, कम से कम खर्च (3) अच्छी से अच्छी गुणवत्ता, कम से कम निरर्थकता (वेस्टेज) । इन मुद्दों पर प्रौद्योगिकीय इकाईयों को प्रभावित किया । इसी के साथ-साथ लाभवादी तथ्यों को उभारने के लिए उद्योग में कार्यरत सभी व्यक्तियों की भागीदारी के मुद्दे पर भी चर्चा की गई है । इसे दो प्रकार से सोचा गया - (1) लाभ के आबंटन के आधार पर (2) उत्पादन, उसकी तादात और गुणवत्ता के आधार पर । इसमें से एक पक्ष उत्पादन पर बल देते रहा, दूसरा पक्ष लाभ के आबंटन पर बल देते आया । अंतिम बात यह है कि अभी तक भय और प्रलोभन के चक्र से प्रौद्योगिकीय व्यवस्था मुक्त नहीं हो पाई । प्रौद्योगिकीय कार्यक्रम के आरंभ होने के पहले से ही राज्य व्यवस्था शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में, परिवार व्यवस्थाएं व्यक्ति केन्द्रित विधियों से भय और प्रलोभन का उपयोग करते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिवार से राज्य तक और एक राज्य से सम्पूर्ण राज्यों तक प्रत्येक प्रौद्योगिकीय कार्यकलाप भय और प्रलोभन से प्रभावित रहा ।

रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित चिंतन के आधार पर ईश्वरीय शासन को परम मानते आए हैं । इसीलिए ईश्वरीय भय, ईश्वर के प्रतिनिधि रूपी राजा का भय, शक्ति केन्द्रित शासन का भय रहा और इसके साथ साथ प्रलोभन जुड़ा ही रहता है । चूंकि कोई भी भय के साथ, सोच नहीं पाता, कर नहीं पाता, जी नहीं पाता, फिर भी मानव विचार करते आया, काम करते आया, जीते आया । भय के साथ प्रलोभन का सहारा बना रहा तथा आस्थाओं का सहारा बना रहा । आस्थाओं का ध्रुव तीन तरीके से परिलक्षित हुआ - (1) ईश्वर और ईश्वर तुल्य व्यक्तियों के प्रति (2) राजा और संविधानों के प्रति (3)

गुरुजनों और विविध प्रकार के साधनाओं के प्रति आस्थाएं अर्पित होती रहीं। इन सभी के मूल में स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य की चर्चा, सभी धर्म कहलाने वाली परंपराओं में प्रतिपादित रही हैं । जिसमें से पाप और नरक के प्रति भय और पुण्य तथा स्वर्ग के प्रति प्रलोभन रहा, इन दोनों से मुक्ति ही सर्वश्रेष्ठ स्थिति बताई जाती है । प्राय: सभी प्रकार के धर्म ग्रंथों में इस प्रकार की मानसिकता को देखा जा सकता है ।

इस प्रकार रहस्यमय ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान लोक मानस पर, भय और प्रलोभन घृणा के रूप में अपना प्रभाव डालते आया । इससे स्पष्ट हो जाता है कि पहले से ही लाभ, द्वेष, संग्रह-शोषण की बात मानव मानस में बढ़ती आयी है ।

भौतिकवादी चिंतन के उपरांत जिस कामोन्मादी मनोविज्ञान का विश्लेषण अध्ययनगम्य हुआ, उससे पहले से रहा आया, भय तथा प्रलोभन और अधिक प्रभावशील हुआ - यह एक प्रक्रिया सहज परिणाम रहा। इन दोनों परिणामों में भोगोन्माद होना एक अनिवार्य घटना अवांछनीय रहा। यह घटना बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में अधिकांश लोगों को विदित हो चुकी है । इनके सम्मिलित प्रभावो के आधार पर अथवा अलग अलग प्रभाव पर मानव का आचरण सहज निश्चयन होना संभव नहीं हुआ । इसके विपरीत प्रकारान्तर से इसकी चाहत (मानवीयता पूर्ण आचरण की अपेक्षा) बनी ही रही । इस प्रकार मानव का पुनः विचार और अध्ययन होना आवश्यकता बन गई । इस क्रम में रहस्यमय ईश्वरवादी चिंतन के आधार पर मानव सहज जितनी भी परिकल्पनाएं हुई, वे विविध देश, विविध काल और भौगोलिक परिस्थितियों में मानव जीवन, जागृति क्रम और जीवन के कार्यक्रम को अध्ययन गम्य कराने में असफल रही हैं । भक्ति व विरक्ति विधि से भी सार्वभौम रूप में लोकव्यापीकरण प्रभावित नहीं हो पाया । इसी प्रकार अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर मानव-जीवन, जीवनी क्रम, जीवन के निश्चित कार्यक्रम का अध्ययन नहीं हुआ । इसलिए निश्चयात्मक, मानवीयता पूर्ण आचरण की परिकल्पना, अध्ययन और प्रमाण तथा इसे व्यावहारिक प्रयोजन के साथ बोधगम्य करा देना ही “मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान“ का अभिप्रेत मुद्दा है।

2. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का आधार

मानवीयता पूर्ण आचरण को पहचानने का आधार, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान है । यह चिंतन अस्तित्व में, अनुभव मूलक विधि से सहज सुलभ हुआ है । सहज का तात्पर्य, प्रत्येक मानव में, से, के लिए अध्ययन मूलक प्रणाली से बोधगम्य होने से और अनुभव मूलक प्रणाली सहित अभिव्यक्त होने से है । सुलभ का तात्पर्य, इसके लोक व्यापीकरण होने की संभावना, आवश्यकता और प्रयोजन से है । अस्तित्व ही नित्य वर्तमान है । इस रूप में, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सह-अस्तित्व होना प्रतिपादित एवं व्याख्यायित हुआ है । नित्य वर्तमान सहज सह-अस्तित्व में ही सम्पूर्ण भाव, क्रिया, स्थिति, गति और अस्तित्व सहज प्रयोजन (पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था) निरंतर प्रमाण रूप में देखना मानव में, से, के लिए सहज है । जिसमें से मानव ज्ञानावस्था में, मानवेतर सम्पूर्ण जीव जीवावस्था में; सम्पूर्ण अन्न वनस्पतियां प्राणावस्था में; और अन्य सभी वस्तुएं पदार्थावस्था में सूत्रित एवं व्याख्यायित हैं । व्याख्यायित होने का तात्पर्य प्रकाशित होने से है । अस्तित्व ही नित्य प्रकाशमान है, विद्यमान है । यह प्रधानतः चार अवस्थाओं में इस धरती पर प्रमाणित हैं । इस धरती में स्थित परम्परा सहज मानव, अध्ययन करने की इकाई है । इस विधि से मानव ही अस्तित्व में अध्ययन करने वाली इकाई है, जिसके आधार पर वह कार्य व्यवहार करने वाला है । अध्ययन पूर्वक ही मानव समझदार होता है ।

अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने "त्व" सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है, यह समझ में आता है । समझने का तात्पर्य, जानने और मानने से है । अध्ययन में, से, के लिए मानव में से के लिए तीन मुद्दे देखने को मिलते है । देखने का तात्पर्य समझना है यह -

(1) अस्तित्व दर्शन ज्ञान (2) जीवन ज्ञान (3) मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ही है । मानव चेतना के लिए ये तीन मुद्दे हैं । अस्तित्व सहज रूप में यह धरती अनन्त ब्रह्माण्डों अथवा अनंत सौर-व्यूहों में से एक सौर-व्यूह में स्थित है । यह धरती अपने आप समृद्ध होने के उपरान्त, मानव से भी समृद्ध हुई है । इस धरती पर मानव सहज अवस्थिति के अनंतर मानव, जो कुछ भी अपनी कल्पनाशीलता, कर्म-स्वतंत्रता के चलते, अभी तक भय, प्रलोभन, आस्थावादी परिकल्पना में उथल पुथल होना देखा गया, यह जागृति-क्रम घटना में गण्य है । "जागृति सहज अभिलाषा सहित, जागृति क्रम का प्रमाण होना पाया जाता है ।" जागृत मानव के लिए ही, प्रमाणित होना वांछनीय है । प्रमाणित होने के क्रम में अभी तक सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज की अपेक्षा बनी रही है, यह अभी भी अपेक्षित है।

भय, प्रलोभन, आस्था के अनंतर न्याय, समाधान और प्रामाणिकता, प्रकारान्तर से सभी मानवों मे अपेक्षित है । अपेक्षाएं मानव में कर्म स्वतंत्रता कल्पनाशीलता वश ही, बहती हुई देखने को मिलती हैं । यही मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का अनुसंधान क्रम सूत्र है ।

अस्तित्व में, से, के लिए "स्थिति सत्य", "वस्तु स्थिति सत्य" तथा "वस्तुगत सत्य" ही न्याय, समाधान, सत्य का अध्ययन है । "स्थिति सत्य" सम्पूर्ण अस्तित्व ही है । अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । प्रकृति, अस्तित्व में, विभक्त अर्थात एक-एक रूप में दिखाई पड़ती है । और अस्तित्व में सत्तामयता कितनी लम्बाई चौड़ाई में फैली है, यह मानव में, से, के लिए, एक आवश्यकता के रूप में, प्रस्तुत नहीं हो पाता। दूसरी विधि से, यह कितना लम्बा चौड़ा है इसको मानव नाप नहीं सकता । इसके साथ यह भी देखने को मिला है कि "मानव, आवश्यकता सहित सम्पूर्ण प्रकार के प्रर्वतन में आरुढ़ होता है ।" अतएव सत्तामयता सहज, लम्बाई चौड़ाई का नाप नहीं हो पाने के कारण ही इसे व्यापक कहा गया है । साथ में सत्तामयता सर्वत्र सर्वदा एक ही स्वरूप में विद्यमान वर्तमान होने के कारण इसे व्यापक कहना, सार्थक सिद्ध होता है । ऐसी व्यापक सत्ता में, अनंत प्रकृति सहज इकाईयाँ अर्थात विभक्त इकाईयाँ होना देखा जाता है । विभक्त होने का तात्पर्य, एक एक के रूप में अंगुली न्यास करने = (देखने, दिखाने) के अर्थ में सार्थक है । खूबी यही है कि सत्ता में ही सम्पूर्ण इकाईयाँ डूबी हुई, भीगी हुई, घिरी हुई होना, पाया जाता है। ऐसी सत्तामयता को शून्य, ज्ञान, परमात्मा आदि नामों से भी इंगित कराया जाता है । सत्तामयता का तात्पर्य है, सम्पूर्ण प्रकृति का, अपनी अपनी अवस्था में, कार्य करने के लिए ऊर्जा सम्पन्न रहना।

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में, से, के लिए सत्तामयता, ऊर्जा के रूप में प्रमाणित है । सत्तामयता का, सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाई जाने वाली प्रकृति में पारगामी होना ही, मुख्य रूप में ऊर्जा का स्वरूप है । इसका परीक्षण एवं प्रमाण हर छोटे से छोटे अंश, जैसे परमाणु, परमाणु में निहित एक एक अंश और उसको यदि विभाजित करें - ऐसे हरेक भाग का गतिशील होना पाया जाता है । इससे सहज पता चलता है कि सम्पूर्ण प्रकृति ऊर्जा में भीगी हुई है। यही सत्तामयता के पारगामी होने का प्रमाण है । सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण प्रकृति में सत्तामयता ओतप्रोत रूप में है - ऐसा पाया जाता है । प्रकृति न हो, ऐसी स्थिति में सत्तामयता को पहचानने वाला अर्थात जानने, मानने, पहचानने, वाला नहीं रह पाता है । दूसरी विधि से ऐसा होना संभव नहीं है । सत्ता न हो, ऐसे स्थान

पर प्रकृति को पाना संभव नहीं है । कहीं भी पाएंगे तो सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति ओत-प्रोत है - यही "सह-अस्तित्व" का मूल रूप है । सह-अस्तित्व, अस्तित्व सहज नित्य वर्तमान है और इसका वैभव है । अस्तित्व सहज रूप में द्दष्टा पद में स्थित मानव को यह पता लगता है कि सत्तामयता स्थितिपूर्ण है । सत्तामयता में स्थित सम्पूर्ण प्रकृति स्थितिशील है । "स्थितिपूर्ण" का तात्पर्य निरंतर महिमा संपन्नता से है । परम महिमा यही है कि प्रकृति में दिखने वाले सम्पूर्ण बल का नियंत्रण और संरक्षण, स्वरूप में बोधगम्य (ज्ञातव्य) है । सत्तामयता का अर्थ निरपेक्ष ऊर्जा और परम बल सहज रूप में नित्य वैभवित रहने से है ।

स्थितिशीलता का तात्पर्य सत्तामयता में संपृक्तता से है । सत्ता में ◌ संपृक्त प्रकृति सहअस्तित्व रूप में नित्य प्रमाणित होने से है, सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति ओत-प्रोत रहने से है । स्थितिपूर्ण सत्तामयता में ऊर्जा संपन्न, बल संपन्न प्रकृति पूर्णता में, से, के लिए बीज संपन्न होने से है । क्योंकि स्थिति पूर्ण सत्ता में संपृक्ततावश, पूर्णता की दिशा सम्पन्नता से है। प्रत्येक वस्तु में दिशा सम्पन्नता स्पष्ट है । ऐसी स्पष्टता को इस प्रकार देखा जा सकता है कि सम्पूर्ण वस्तु परमाणु के रूप में क्रियाशील है । क्रिया अपने में श्रम, गति, परिणाम का अविरत कार्य है ऐसा दिखाई पड़ता है । श्रम, गति, परिणाम संपन्न परमाणु में ही, पूर्णता सहज दिशा स्पष्ट है । यथा प्रत्येक इकाई अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है । हर वस्तु अपनी संपूर्णता के साथ त्व संपन्न वर्तमान है । यह पदार्थ व प्राण अवस्था है । यह विकास क्रम सहज रूप है । यही भौतिक-रासायनिक क्रियाकलाप हैं । विकास भी परमाणु में ही सम्पन्न होता है । विकसित परमाणु जीवन पद में है । परमाणु में ही श्रम, गति, परिणाम व्याख्यायित है । परिणाम का अमरत्व ही परमाणु में विकास की मंजिल है । रासायनिक द्रव्यों से रचित समृद्धि, पूर्ण मेंधसयुक्त शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव है । गर्भाशय में शरीर रचना का होना स्पष्ट है । जीवन विकसित परमाणु, चैतन्य इकाई के रूप में अस्तित्व में रहता ही है । मानव परम्परा में शरीर के साथ जीवन का संयोजन जागृति पूर्णता के अर्थ में है, यही श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य के रूप में प्रमाण है । परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य ही दिशा है । इसे प्रत्येक मानव समझने में समर्थ है । यही मुख्य तथ्य है । मानव संचेतना को, समझने समझाने का आधार एवं प्रक्रिया है । मानव ही अस्तित्व में द्दष्टा है । इस साक्ष्य को आगे संदर्भानुसार स्पष्ट किया है । इसके पहले प्रत्येक मानव, कल्पनाशील कर्म स्वतंत्र है

- यह बात चर्चा में आ चुकी है । ऐसी कल्पनाशीलता की महिमावश ही अस्तित्व में अध्ययन का साहस जुटा पता है । इसी क्रम में प्रत्येक प्रजाति के वस्तु का अपनी परमाणुविक स्थिति में क्रियाशील होना पाया जाता है । परमाणु में ही, श्रम, गति, परिणाम व्याख्यायित होता है और परमाणु ही "परिणाम का अमरत्ववश" जीवन पद में संक्रमित है । परिणाम के अमरत्व के मूल में गठन पूर्णता ही प्रधान प्रक्रिया है । यह अस्तित्व सहज घटना है ।

अस्तित्व ही नित्य वर्तमान और परम सत्य है । इस प्रकार सत्य में, से, के लिए ही विकास क्रम, विकास व जागृति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन है । अस्तित्व अपने स्वरूप में सर्व-देश, सर्वकाल, सर्ववस्तु ही है । वस्तु का तात्पर्य वास्तविकताओं को प्रकाशित करता हुआ प्रमाण से है। सर्वदेश का तात्पर्य मूलतः सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति है । रचना सम्पन्न प्रकृति में ही देश चिन्हित होता है । सत्तामयता, को सर्वदेश इसीलिए कहना बनता है कि सम्पूर्ण प्रकृति का सत्तामयता में नियंत्रित, संरक्षित, ऊर्जा संपन्न और क्रियाशील होना वर्तमान में दिखाई पड़ता है । सम्पूर्ण प्रकृति की स्थिति-गति सत्ता में ही है । आवास को देश कहें तब सत्तामयता ही मूलतः देश के रूप में प्रमाणित है । रचना की अवधि रूपी विस्तार को देखने की स्थिति में सम्पूर्ण रासायनिक, भौतिक रचनाएं, सीमित देश के रूप में हैं । इस प्रकार भी व्यापक सत्ता में परिमित (सीमित, विभक्त) वस्तुएं नित्य वर्तमान हैं, यह समझ में आता है । इस प्रकार प्रकृति परिमित (सीमित), सत्ता अपरिमित (व्यापक) 'वस्तु' देश के रूप में अस्तित्व में स्पष्ट है ।

परिमित वस्तुओं में देश विभाजन रेखा होना मान लिया जाता है, होता नहीं । जबकि व्यापक सत्ता स्वयं अखण्ड रूप में है अतः सत्ता ससीम चिन्हित नहीं होती । इसे कोई भी, प्रयोग कर देख सकता है । इसका मूल तथ्य यही है - (1) सत्तामयता का सम्पूर्ण प्रकृति में पारगामी होना । (2) सत्तामयता का पारदर्शी होना । (3) व्यापक होना । परिमित वस्तुओं में विभाजन रेखाओं को मान लिया जाता है । ऐसा हुआ नहीं रहता । जैसे इस धरती पर, अनेक देशों के नाम से भूखंडों का सीमाकरण आदमी करता है । इसी के साथ यह भी देखा जाता है कि वह सीमाएं धरती से विखंडित न होकर अखंड रहती है । यह धरती अपने वातावरण सहित संपूर्णता सम्पन्न इकाई है । सम्पूर्णता अपने में अखण्ड है । यह अखंडता निरंतर बनी ही रहती है । जब तक धरती अपनी स्थिति को बनाए रख पाती है । यह भी स्पष्ट हो चुका है कि यह धरती अपने में समृद्धि और संतुलन संपन्न होने

के फलस्वरूप, मानव के भी वैभव आवास योग्य हुई है । इसका साक्ष्य इस धरती पर मानव का होना ही है । इससे यह पता चलता है कि इस धरती की सहज सटीकता का अध्ययन करना भी एक अनिवार्य स्थिति है ।

यह धरती अस्तित्व में अविभाज्य है और अनेक सौर-व्यूहों में से, एक सौर-व्यूह के अंगभूत रूप में वैभवित है । इसी धरती पर मानव अपने को नैसर्गिकता सहित सुरक्षित रहना पाते ही आया । फलस्वरूप मानव अपनी कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रतावश सामुदायिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को प्रयोग करते ही आया । ऐसे सभी प्रयोगों के फलस्वरूप, संतुलित नैसर्गिकता से, असंतुलित नैसर्गिकता की ओर गति स्पष्ट हुई । इस धरती के अधिकांश मानव, ऐसे परिवर्तन से व्याकुल हुए, ऐसा सुनने को मिलता है । इसका मूल तत्व, मानव संचेतना विरोधी मानसिकता ही प्रधान कारण और कार्य रहा है । मानव का अध्ययन जिस प्रकार से अभी तक संपन्न हुआ, उसी के आधार पर मानव संचेतना विरोधी मानसिकता (संवेदनशील मानसिकता) को प्रोत्साहन मिला, जबकि संज्ञानशीलता के नियंत्रण में, संदवेनशीलता को पहचानने की आवश्यकता रही । यह विफल रहा अतएव परिणाम नकारात्मक, मानव विरोधी रूप में प्रवर्तित हुआ । इस प्रकार मानवत्व सहित ही मानव संचेतना है । इसी प्रकार देव संचेतना, दिव्य संचेतना प्रकट होना सहज है ।

मानव का सम्पूर्ण अध्ययन मध्यस्थ दर्शन में सपन्न किया गया । अस्तित्व दर्शन के आधार पर यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की सहज स्थितियों का अध्ययन किया गया । इसी क्रम में अस्तित्व में, ज्ञानावस्था में मानव को पहचाना गया । ज्ञानावस्था का तात्पर्य दृष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता, भोक्ता और पुनः दृष्टा के रूप में जीने के कार्यक्रमों सहित अभिव्यक्त, संप्रेषणाशील और प्रकाशित होने से है । यही जागृति है ।

अस्तित्व में “परमाणु में विकास” पूरकता, संक्रमण, जीवन, जीवनी क्रम, सकारात्मक समझ, पद्धति, प्रणाली, दिशा की ओर जीने का कार्यक्रम रूपी परिवार मूलक स्वराज्य और स्वानुशासन रूपी स्वतंत्रता को विधिवत अध्ययन किया गया है । साथ ही साथ अस्तित्व में विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, भौतिक रासायनिक रचनाओं और विरचनाओं का भी अध्ययन किया गया । इस प्रकार जीवन, जीवन जागृति क्रिया और भौतिक रासायनिक क्रियाओं को सांगोपांग अध्ययन करने के उपरान्त पता चला कि संक्रमण, जीवन, जीवन जागृतिक्रम, जागृतिपूर्णता तथा उसकी निरंतरता

पूर्वक मानव परम्परा नित्य वैभवशील होना समझा गया । सभी मानव अभी तक जागृति क्रम में स्थित जीवन और रासायनिक भौतिक रचना सहज शरीर के संयुक्त रूप में प्रत्येक नर-नारी है । इन तथ्यों के आधार पर सहज मानव "ज्ञानावस्था की इकाई" का पहचान सहित नाम दिया गया है ।

अस्तित्व में "परमाणु का विकास" देखने को मिलता है । प्रत्येक परमाणु में गठन, प्रत्येक गठन में एक से अधिक अंशों को देखा जाता है अथवा समझा जाता है । इस प्रकार गठन का अर्थ, परमाणु में कार्यरत अंशों को पहचान सहित इंगित करने के अर्थ में स्पष्ट है । परमाणु गठन में कम से कम दो अंशों का होना प्रमाणित है । इससे यह पता लगता है कि गठित होने का उपक्रम प्रवृत्ति अंशों में ही होना समाहित रहता है । इससे प्रत्येक अंश-गठन में, स्वभाव गति सम्पन्न होने का आशय समाहित है और एक अंश, दूसरे अंश से निश्चित दूरी को बनाए रखते हुए, कार्यरत रहना समझ में आता है । इससे यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि एक अंश, दूसरे अंश की निश्चित दूरी को, पहचानते हुए कार्य करते हैं । प्रत्येक गठन गतिपथ सहित, कार्यशील रहना पाया जाता है । गति पथ कम से कम एक होना, भी एक अनिवार्य स्थिति है, यह समझ में आता है । इसी गतिपथ को परिवेश भी कहा गया है । इसी क्रम में एक परिवेश से आरंभ होकर परमाणु में एक से अधिक परिवेशों को देखा गया है । इस विधि से अंशों का अधिक कम होना भी परमाणु में विकास-क्रम में देखा गया । इस प्रकार परमाणु में विकास का आधार (1) अंशों का गठन (2) गतिपथ (3) अंशों का प्रस्थापन (अंशों का गठन में समाहित होना) विस्थापन (अंशों की संख्या घटना-बढ़ना) ज्ञात हुए । ऐसे विकास क्रम में, गठन पूर्ण पद में संक्रमित होना पाया जाता है । पाये जाने का तात्पर्य, अस्तित्व में होने से मानव सहज समझ से है । ऐसे गठन पूर्ण परमाणु ही जीवन के रूप में वैभवित होते है - ऐसा पाया जाता है ।

विकास-क्रम में जितने भी परमाणु होते हैं, ये सब अपने ही स्वभाव गति में प्रकाशित होते हैं । फलस्वरूप उन उन का मौलिक आचरण स्पष्ट है। मौलिकता का तात्पर्य, उन उन के आचरण का निश्चित पहचान बनाए रखने से है - जैसे दो अंशों से गठित परमाणु, अपने अपने आचरण में मौलिक होते हैं । ऐसे परमाणुओं को, भौतिक परमाणुओं के नाम से जाना जाता है । ऐसे परमाणु भौतिक रूप में होते ही हैं । भौतिकता का प्रमाण, परमाणुओं में भारबन्धन और अणुबंधन के रूप में प्रमाणित है । ऐसे बंधन के आधार पर ही, अनेक परमाणुओं से रचित अणु और अनेक अणुओं से

रचित पिण्ड देखने को मिलते हैं । ऐसी भौतिक वस्तुएं, अपने में समृद्ध होने के उपरान्त ही रासायनिक क्रियाकलाप में, भागीदारी का निर्वाह करते हुए दिखाई पड़ती है । रासायनिक क्रिया का तात्पर्य, विभिन्न भौतिक अणु, निश्चित अनुपात से मिलकर, अपने अपने आचरणों को त्याग कर तीसरे प्रकार के आचरण के लिए तत्पर होने से है । जैसे - पानी, अम्ल और क्षार के रूप में देखने को मिलता है । ऐसे रासायनिक द्रव्यों का उष्मा एवं दबाव सहित, प्राण कोशाओं के रूप में उदात्तीकृत होना, सह-अस्तित्व सहज क्रिया है । उदात्तीकरण होने का तात्पर्य प्राण कोषा और उनसे रचित रचनाओं से है। प्राणावस्था, जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था का प्रकटन वैभव ही उदात्तीकरण का प्रयोजन है । इस प्रकार उदात्तीकरण का निश्चित स्वरूप और प्रयोजन स्पष्ट होता है ।

उदात्तीकरण पूर्वक ही मानव शरीर भी एक रासायनिक रचना है और चैतन्य पद में संक्रमित परमाणु ही जीवन है - यह अस्तित्व सहज है। इस जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का होना और मानव परम्परा का होना पाया जाता है ।

मानव परम्परा में जागृति ही प्रमाणों का आधार है । जीवन में जागृति मानव परम्परा में ही चरितार्थ रूप मानव का होना पाया जाता है । जीवन जागृति मानव शरीर द्वारा मानव परम्परा में प्रमाणित होती है । जीवन का तात्विक स्वरूप को गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में और रचनाओं को रासायनिक भौतिक रूप (और रचना) में समझा गया है कि -

(1) जीवन अपने स्वरूप में, गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई है । गठनपूर्ण परमाणु का तात्पर्य है कि जिस गठन में, सम्पूर्ण परिवेश, मध्य में स्थित अंश अपने अपने में तृप्त हो ।

(2) जीवन परमाणु में, मध्य बिंदु में और आश्रित परिवेशों में, जितनी जितनी संख्या में अंश स्थित होना है, वह पूर्ण हुआ रहता है । इसकी कार्य-योजना “सह-अस्तित्व सहज” है, मानव सहज कार्य-योजना जागृति को प्रमाणित करना ही है ।

(3) गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य पद में होता है, जिसको जीवन नाम दिया गया है । ऐसे परमाणु अर्थात जीवन परमाणु संक्रमण के साथ ही अणुबंधन मुक्ति, भारबन्धन मुक्ति और आशा बन्धन से युक्त होना पाया जाता है । यही बिंदु है - जीने की सहज आशा और आस्वादनापेक्षा उद्गमित रहती है ।

(4) जीवन परमाणु अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न रहता है क्योंकि मात्रात्मक परिवर्तन, जीवन परमाणु में होता नहीं । यह अणुबंधन मुक्ति के साथ ही, आशा बन्धन महिमा स्वरूप देखा जाता है ।

(5) जीवन परमाणु अपनी वर्तुलात्मक गति से अधिक कम्पनात्मक गति वैभव सम्पन्न होता है, यह भारबन्धन मुक्ति का फलन है । यही आशाबन्धन के साथ ही प्रवर्तन विधियों को, पहचानने, निर्वाह करने के कार्यक्रम को निर्धारित करता है । मानवेतर जीवों के कार्यकलाप (वंशानुषंगीयता के क्रम में) वंशानुषंगीयता का स्वरूप, कार्य, शरीर रचनानुषंगीय विधि से प्रमाणित रहता है । जीवन में आशा-चयन और आस्वादन में; विचार-तुलन और विश्लेषण में; इच्छाएं चिंतन (साक्षात्कार) और चित्रण में; अवधारणा-बुद्धि बोध और संकल्प में; आत्मा-प्रमाण अनुभव और प्रामाणिकता में कार्यरत रहता है । इसका प्रमाण प्रत्येक जागृत मानव ही है ।

(6) प्रत्येक जागृत मानव में ऊपर कहे गए सभी लक्षणों को अध्ययन करना संभव है इसमें और खूबी यही है कि जीवन सहज महिमा को स्वयं में अनुभव कर सकता है और मानव में ही सहज रूप में प्रमाणों को पा सकता है।

(7) जागृत मानव परम्परा में प्रत्येक मानव, जागृति सहज प्रमाण होता है । सभी मानवों से यही अपेक्षा है, अपितु प्रत्येक मानव मनाकार को साकार करने वाला, मनः स्वस्थता का आशावादी और प्रमाणित करने वाल है । यह परिभाषा प्रत्येक मानव में देखने को मिलती है । मनाकार को साकार करने का तात्पर्य सामान्य आकाँक्षा जैसे - आहार, आवास, अलंकारों सहित समृद्धि का अनुभव करने की आकाँक्षा और महत्वाकाँक्षा जैसे - दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन साधनों से संपन्न होने की कामना स्पष्ट होती है। मनः स्वस्थता का तात्पर्य जागृति सहज सुख, शांति, संतोष, आनंद और उसकी निरंतरता सहज स्थिति को समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्ण आचरण पूर्वक प्रमाणित करता है ।

(8) मानवापेक्षित परिवार मूलक, स्वराज्य व्यवस्था क्रम में, सम्पूर्ण सामान्य आकाँक्षाएँ प्रमाणित होना एवं सुलभ होना संभव है । इसी के साथ महात्वाकाँक्षा संबंधी उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता भी प्रमाणित होना सहज है ।

(9) जीवन सहज रूप में बल और शक्तियाँ अक्षय हैं, अविभाज्य हैं और शाश्वत् हैं । इनमें से बलों का नाम मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा और शक्तियों का नाम आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता दिया गया है । जीवन सहज बलों में संगीतीकरण ही, मनः स्वस्थता का सम्पूर्ण स्वरूप है । शक्तियों में संगीतीकरण ही व्यवहार में प्रमाणित होने का सूत्र है । मानव परम्परा में परस्परता और व्यवहार, एक सहज कार्यकलाप है । जीवन में अनुभव, मनः स्वस्थता का परम है क्योंकि अनुभव सत्य में, से, के लिए है, उसका प्रमाण व्यवहार परम्परा में ही सार्थक होना संभव है। ऐसे बल में संगीतीकरण को देखा (समझा) गया है कि जागृत जीवन सहज क्रिया व आचरण के अनुसार वृत्ति के अनुरूप मन के कार्य करने की स्थिति में सुख मिलता है, जिसका प्रमाण स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी होने से है । यह तभी संभव होता है जब मन, वृत्ति के अनुरूप; वृत्ति, चित्त के अनुरूप; चित्त, बुद्धि के अनुरूप; बुद्धि, आत्मा के अनुरूप; आत्मा, अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व के अनुरूप कार्य करने की स्थिति में और गति में प्रमाणित होता है । इसलिए चित्त के अनुरूप वृत्ति में तुलन और विश्लेषण संगीतीकरण विधि से, शांति सहज प्रमाण को देखा गया है । बुद्धि के अनुरूप कार्य करता हुआ चिंतन और चित्रण सत्यबोध सहज कार्यप्रणाली और प्रक्रिया में संगीतीकरण स्वयं संतोष के रूप में प्रमाणित होना पाया गया है । बुद्धि, आत्मानुरुपी विधि से, कार्यकलापों को संपन्न करती है, तब परम संगीत, आनंद के नाम से ख्यात होता है । आत्मा में सह-अस्तित्व के अनुरूप कार्य होना सहज है । यह सहजता, मानवीयता पूर्ण प्रामाणिकता सम्पन्न परम्परा की महिमा से सर्व सुलभ होता है । दूसरा, अनुसंधान विधि से भी संपन्न होता है । इस प्रकार बलों में संगीतीकरण प्रणाली से मनः स्वस्थता का प्रमाण और शक्तियों में संगीतीकरण प्रणाली से नैसर्गिक संतुलन, अखंड समाज में संतुलन, सार्वभौम व्यवस्था में संतुलन, मानवीय शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम सहित न्याय-सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय-सुलभता सम्पन्न संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था में संतुलन संभव है । इसे प्रमाणित करने के क्रम में ही "मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान" की सहज प्रस्तुति है ।

3. "मानव तथा पूरकता"

अस्तित्व में मानव एक अविभाज्य इकाई है । मानव का स्वरूप शरीर और जीवन के सह-अस्तित्व में प्रमाणित है - जिसमें से जीवन नित्य है क्योंकि जीवन "परिणाम के अमरत्व" सहज फलन चैतन्य पद एवं ज्ञानावस्था में वैभवित है । ऐसा जीवन शरीर को जीवन्त रखते हुए, जागृत जीवन सहज आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता के आधार पर संचालित होना पाया जाता है । शरीर संवेदना के क्रिया-कलाप, जीवंतता के आधार पर ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों का कार्य संपादित हो पाता है। कर्मेन्द्रयों का क्रियाकलाप, जीवन्तता स्पष्ट न रहते हुए भी कुछ क्षण, कुछ दिन, कुछ मास और वर्ष तक भी पराधीनता विधि से सप्राणित रह सकता है अर्थात् श्वास और हृदय क्रिया चल सकती है । इस अवस्था में मानव सहज परिभाषा का कार्यकलाप नहीं हो पाता, इसका प्रमाण कई लोग देख चुके हैं । अस्तु, शरीर सप्राणित रहना भी आवश्यक है । यह तथ्य ऊपर स्पष्ट किए गए विश्लेषण से निश्चित होता है । जीवन्तता, जीवन का ऐश्वर्य है । श्वास लेने-छोड़ने की प्रक्रिया प्राण कोशाओं से रचित शरीर रचना की महिमा है ।

इस प्रकार जीवन और शरीर के संयुक्त रूप मानव-परम्परा की भी स्थापना, सह-अस्तित्व सहज प्रकटन के रूप में दिखाई पड़ती है । सह-अस्तित्व, मूलतः अस्तित्व ही है, इस कारण नैसर्गिकता सहज प्रकृति में सह-अस्तित्व प्रमाणित होना नित्य प्रसवशीलता है । प्रसवशीलता का तात्पर्य, विविध अवस्थाओं में वैभवित, प्रकृति सहज मौलिकता और संबंधों से है । ऐसी मौलिकताओं के मूल में परस्पर पूरकता का होना, दिखाई पड़ता है । जैसे ऊर्जा रूपी सत्ता में संपृक्त प्रकृति का परस्पर पूरक होना स्पष्ट है क्योंकि सत्तामयता में ही सम्पूर्ण प्रकृति प्रमाणित है, वैभवित है । सम्पूर्ण प्रकृति ही, सत्तामयता सहज प्रमाणों को, क्रियाशीलता के रूप में प्रस्तुत करते आई है। इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रकृति के विविध अवस्थाओं और पदों में वैभवित रहना हमें अध्ययन गम्य है ।

सह-अस्तित्व सहज इस धरती पर चार अवस्थाओं में जैसे - पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था में, प्रकृति का वैभव देखने को मिलता है । यही प्राणपद, भ्रांतिपद, देवपद और दिव्यपद में वैभवित रहना अध्ययन गम्य है । जैसे - पदार्थावस्था का आंशिक तत्व प्राणावस्था में, प्राणावस्था विरचित होकर पदार्थावस्था में परिवर्तित होता हुआ देखने को मिलता है । इसी को दूसरी विधि से कह सकते हैं कि, अन्न वनस्पति रूपी प्राणावस्था का वैभव, रासायनिक द्रव्यों की महिमा के रूप में वैभवित हुई है । सभी अन्न-वनस्पतियाँ, रासायनिक रचना के रूप में पाई जाती हैं । इसका मूल

तत्व भौतिक वस्तुएँ हैं । भौतिक वस्तुओं का रूप अणुएँ हैं, अणुओं का स्वरूप है । अणुओं के मूल रूप में परमाणु ही है । परमाणुओं के मूल रूप में परमाणु अंश ही भौतिक वस्तुओं के रूप में दिखाई देते हैं । इस प्रकार भौतिक वस्तुएं रासायनिक द्रव्यों के रूप में, रासायनिक द्रव्य प्राण कोषा और कोशाओं से रचित, रचनाओं के रूप में होती हैं ।

प्राण कोषाओं से रचित सम्पूर्ण रचनाएं विरचना क्रम में पदार्थावस्था में परिवर्तित होते देखी जाती हैं । यही आवर्तनशीलता का प्रथम प्रमाण, पूरकता के साक्ष्य के रूप में देखने को मिलता है । मानव शरीर और जीव शरीर भी प्राण कोशाओं से रचित हैं । इसकी विरचना भी, अन्न वनस्पतियों की विरचना की तरह, पदार्थावस्था में परिवर्तित होने के क्रियाकलाप के सदृश्य दिखाई पड़ता है । इसी के साथ पदार्थावस्था और प्राणावस्था की तरह स्वदेज प्रकृति का भी, इसी प्रकार परिणितियों से संपन्न रहना, देखा जाता है ।

स्वेदज संसार भौतिक वस्तु और रासायनिक द्रव्य सहज, संयोग होता है । इनका आचरण न तो भौतिक वस्तुओं जैसा होता, और न समृद्ध मेधस सम्पन्न शरीर रचना और जीवन के संयुक्त रूप में होने वाले आचरण जैसा । इसीलिए इसका नाम स्वदेज प्रकृति दिया गया है । इन्हीं रचनाओं में से मेधस प्रणाली का आरंभ होना पाया जाता है । यही क्रम से, समृद्धि की ओर गतिशील रहता है । क्योंकि समृद्ध मेधस सम्पन्न शरीर रचना, इसी धरती में साक्षित हो चुकी है । इसके सामान्य लक्षण रस, मांस, मज्जा, हड्डी, नस, रक्त, चर्म संपन्न शरीर रचना में समृद्ध मेधस का वैभव जीवावस्था में वंशानुषंगीयता के रूप में, प्रमाणित है और मानव संस्कारानुषंगीयता के रूप में प्रमाणित होता है । वंशानुषंगीयता में जीवन, शरीरों के अनुरूप कार्य-कलाप में संलग्न हो जाता है, फलतः वंशानुषंगीय अभिव्यक्ति में जीवन का वैभव सम्बद्ध हो जाता है । दूसरी विधि से शरीर की रचना में भागीदारी के रूप में सम्बद्ध प्राण कोषाएं निष्प्राण होकर पुनः ऋतु और ऋतुप्रभाव (शीत, उष्ण, वर्षामान का प्रभाव) के अनुसार पुनः सप्राणित होकर कार्य करती है । इसमें जितनी भी रचना, विरचनाएं है, इनमें मेधस का शुभारंभ होते हुए भी, समृद्ध न होने का प्रमाण, स्पष्ट हो जाता है । इस प्रकार से ऐसी क्रियाएं, प्राकृतिक रूप में असमृद्ध मेधस की व्याख्या में, स्पष्ट हो चुकी हैं ।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बीसवीं सदी के दसवें दशक में वैज्ञानिक अनुसंधान, शोध, प्रयोग (ह्रास विधि सूत्र, यंत्र प्रमाण की महिमा) के साथ मानव शरीर की कोशाओं से ऐसे मानव शरीर के तैयार

होने के कार्यक्रम की परिकल्पना दी गई । यह प्रकृति में, वह भी स्वदेज अवस्था में केंचुआ, जोंक आदि रचनाएं विरचित होकर प्रत्येक मृतक कोषा पुनः उसी प्रकार की रचना के लिए बीज रूप है और इसके साकार होने के प्रमाणों को देखा गया है । जैसे एक जोंक को सुखाकर बुरादा बना लें, उसको किसी नमी के स्थान पर, जैसे मिट्टी के बर्तन में पानी भर दें । पानी की नमी धीरे धीरे बहिर्गत होती रहे । उसे पेंदी से लगा हुआ, जोंक का बुरादा डाल दें, कुछ ही दिनों में बहुत से जोंक देखने को मिलते हैं । इसी प्रकार चमड़े की कोषाएं निष्प्राणित होने के बाद भी सप्राणित होना प्रमाणित हो जाता है । अभी अत्याधुनिक खर्चीली विधियों से, इसी को दोहराने का उपक्रम किया गया है । इसमें भी मानव शरीर के एक कोषा को, उसमें निहित प्राण सूत्र अथवा रचना सूत्र के आधार पर बहुकोषाओं में प्रवर्तित और रचना सूत्र में स्थापित रचना के रूप में रचित होने के लिए आवश्यकीय रासायनिक द्रव्यों को सुलभ कराने और ऊष्मा व दबाव नियंत्रित कर रखने में मानव सफल हुआ है । फलस्वरूप कृत्रिम शरीर रचना एक संभावना के रूप में आ चुकी है । मूलतः यह प्राकृतिक स्वरूप ही है क्योंकि इस कार्य-कलाप में भी किसी शरीर का मूल प्राण कोशाओं का आधार रहता है इसलिए यह भी प्राकृतिक स्वरूप में भी गण्य हो पाता है । इसका उदाहरण पहले देख चुके हैं ।

कृत्रिम शरीर रचना की अस्मिता के सम्बन्ध में मूल मानसिकता को विश्लेषित करने पर पता लगता है कि (1) किसी एक प्रजाति की शरीर रचना को बहु-संख्या में प्राप्त कर लें, इससे बेहतरीन समाज-रचना हो सकती है, इस बात की सूझ-बूझ रंग और नस्ल के आधार पर सोची जा सकती है। सभी रंग और नस्ल भी अभिव्यक्ति की विविधता में और किसी एक ही व्यक्ति में बुहमुखी प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति देखने को मिलती है । इसके बावजूद अभिलाषाएं या परिकल्पनाएं कृत्रिम मानव के सृजन के मूल में, एक प्रजाति की कामना का होना संभव है । इसी के साथ अन्य प्रजातियों के शरीर रचना की संख्या को घटाने की भी परिकल्पना हो सकती है । इससे संसार का कोई उपकार होने की संभावना नहीं है क्योंकि मानव संस्कारनुषंगीय इकाई है, सुख धर्मी है और विज्ञान तथा विवेक पूर्ण विधि से जीने की कला में जागृत होना प्रत्याशित, आशित और संभावित तथ्य है ।

संस्कार समझ शरीर-गत तथ्य न होकर, जीवन-गत तथ्य है । जीवन में सम्पूर्ण समझदारी का स्थान और प्रणाली है । शरीर में कोई ऐसा अंग, अवयव और इन्द्रियाँ नहीं है, जो जीवंतता के अभाव में ज्ञान इन्द्रियों की क्रियाएं सम्पन्न कर सके । ज्ञानेन्द्रियों में ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसमें नियम,

न्याय, समाधान, सत्य की प्यास हो । मेधस रचना में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो श्रुति और स्मृति का धारक वाहक हो सके । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँचों स्मृति के रूप में जीवन में ही प्रभावित रहते हैं । इसी क्रम में नियम, न्याय, धर्म और सत्य की प्यास है । जीवन तृप्त होने का, यही स्रोत है । नियम का प्रमाण, नियंत्रण, संतुलन सहित, पूरकता के रूप में है । नियंत्रण और संतुलन स्वभाव गति के रूप में देखा जाता है । देखने का कार्य समझना है, समझने का कार्य जीवन में है । जीवन में ही जानने, मानने, पहचानने का सम्पूर्ण वैभव समाहित रहता है । मानव परम्परा के रूप में प्रमाणित होने के क्रम में, शरीर के द्वारा निर्वाह सम्पन्न होना पाया जाता है। इससे शरीर की महत्ता एवं प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है कि मानव परम्परा में प्रमाणित होने के क्रम में, एक आवश्यकीय अनिवार्य माध्यम है ।

मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)

प्रणेता एवं लेखक: अग्रहार नागराज

सम्पूर्ण वांडमय डाउनलोड:

www.madhyasth.org

www.bit.ly/dpsroot